कर्मक्षपण दर्पण

अध्यात्म योगी
पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी
वर्णी "सहजानन्द" जी महाराज

आत्म-रमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूँ, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ॥ टेक ॥

हूँ ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूँ सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण ॥
हूं सत्य सहज आनन्दधाम, मैं सहजानन्द०, मैं दर्शन० ॥१॥

हूँ खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं।
परका न प्रवेश न कार्य यहां, मैं सह० मैं दर्शन० ॥२॥

आऊं उतरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सह०, मैं दर्शन० ॥३॥

मंगलतंत्र

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि

मैं ज्ञानमात्र हूँ, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं।
मैं ज्ञानघन हूं, मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं।
मैं सहज आनन्दमय हूँ, मेरे स्वरूपमें कष्ट नहीं, अतः स्वयंतृप्त हूं।

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि।

कर्मक्षपण दर्पण

(रचियता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्त, न्याय, साहित्य शास्त्री)
पूज्यश्री गुरुवर्य्य मनोहरजी वर्णी श्रीमत्सहजानन्द, महाराज

पाठ १—कर्म प्रकार

जीव अनादि परम्परा से कर्म से बंधा व अशुद्ध पर्यायों के रूप परिणमता हुआ चला आ रहा है जिससे चारों गतियों में भ्रमण करता व विविध क्लेश भोगता चला आ रहा है। जिस जीव को क्षायोपशमलब्धि आदि पञ्चलब्धियों द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है और उसमें भी क्षायिक सम्यक्त्व होता है वहां कर्म प्रकृतियों का क्षय होना प्रारंभ होता है और सातिशय अप्रमत्त विरत होकर क्षपकश्रेणि से चढ़ कर शुक्ल ध्यान, वीतराग स्वात्मानुभव द्वारा अनेक कर्मप्रकृतियों का क्षय करता हुआ सकल परमात्मा होता है व अन्त में शेष कर्मप्रकृतियों का क्षय करके अशरीर परमात्मा सिद्ध भगवान हो जाता है। यह परमपवित्रनीरंग निरस्तरंग निराकुल सहज परमानन्दमय स्थिति सदा के लिये हो जाती है। इस पुस्तक में उन्हीं समस्त कर्मप्रकृतियों के क्षय का क्रमशः वर्णन किया जायगा। यह सब प्रकृतिक्षय आत्मा के विशुद्ध परिणामों का निमित्त पाकर होता है।

जीव के योग और कषाय भाव का निमित्त सन्निधान पाकर कार्माण वर्गणाओं में कर्मत्व का आस्रव बन्ध होकर उभयबन्ध हो जाता है, इन कर्मों की मूल प्रकृतियां ८ हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय ये चार घातिया कर्म हैं तथा वेदनीय, आयु, नाम व गोत्र ये चार अघातिया कर्म हैं। जो जीव के गुणों का घात होने में निमित्त हैं उन्हें घातिया कर्म

कहते हैं और जो जीव के गुणों के घातने में साक्षात् निमित्त तो न हों, किन्तु घात के सहायक साधनों के निमित्त हों उन्हें अघातिया कर्म कहते हैं। आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियां इस प्रकार हैं—ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ९, मोहनीयकी २८, अन्तरायकी ५, वेदनीयकी २, आयुकर्म की ४, नामकर्मकी ९३, व गोत्रकर्मकी २। ये सब मिलकर १४८ प्रकृतियां हैं।

ज्ञानावरण ५—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय-ज्ञानावरण, केवल-ज्ञानावरण।

दर्शनावरण ९—चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवल-दर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला व स्त्यानगृद्धि।

मोहनीय २८—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति (दर्शन मोहनीय ३) अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, (चारित्रमोहनीय २५)।

अन्तराय ५—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय व वीर्यान्तराय।

वेदनीय २—सातावेदनीय, असातावेदनीय।

आयुकर्म ४—नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु, देवायु।

नाम कर्म ९३—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, देवगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर-नामकर्म, वैक्रियकश, आहारकश, तैजसश, कार्माण शरीरनामकर्म, औदारिकाङ्गोपाङ्गनामकर्म, वैक्रियका, आहारकाङ्गोपाङ्ग नामकर्म, निर्माण-नामकर्म, औदारिकशरीर, बंधननामकर्म, वैक्रियकबं, आहारकबं, तैजसबं, कार्माण शरीर बंधननामकर्म, औदारिक शरीरसंघातनामकर्म, वैक्रियकश०, आहारकश, तैजसश, कार्माणशरीरसंघात नामकर्म, समचतुरस्र संस्थान नाम-कर्म, न्यग्रोधपरिमंडल-सं०, स्वाति०, कुब्जकसं०, वामनसं०, हुण्डकसंस्थान

नामकर्म, वज्रऋषभ, नाराचसंहनन नामकर्म, वज्रनाराचसं०, नाराचसं०, अर्धनाराचसं०, कीलकसं०, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नामकर्म, स्निग्धस्पर्श-नामकर्म, रूक्षस्प०, शीतस्प०, उष्णस्प०, मृदुस्प०, कठोरस्प०, लघुस्पर्श०, गुरुस्पर्शनामकर्म, अम्लरस नामकर्म, मधुरासना०, कटुरस०, तिक्तरस०, कषायितरस नामकर्म, सुगंधनामकर्म, दुर्गन्धनामकर्म, कृष्णवर्ण नामकर्म, पीतव०, नीलव०, रक्तव०, श्वेतवर्ण नामकर्म, नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यगत्यानुपूर्व मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य अगुरुलघ नामकर्म, उपघात नामकर्म, परघातनामकर्म, आतापनामकर्म, उद्योतनामकर्म, उच्छ्वासनामकर्म, प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म, अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म, प्रत्येकशरीरनामकर्म, त्रसनामकर्म, सुभगनामकर्म, सुस्वरनामकर्म, शुभनामकर्म, सूक्ष्मनामकर्म, पर्याप्ति नामकर्म, स्थिरनामकर्म, आदेय नामकर्म, यशःकीर्ति नामकर्म, साधारण शरीर नामकर्म, स्थावर नामकर्म, दुर्भग नामकर्म, दुःस्वरनामकर्म, अशुभ-नामकर्म, बादरनामकर्म, अपर्याप्ति नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, अनादेय नामकर्म, अयशःकीर्ति नामकर्म, तीर्थंकरत्वनामकर्म।

गोत्रकर्म २ - उच्चगोत्रकर्म, नीचगोत्रकर्म।

इन सब प्रकृतियों का लक्षण धर्मबोध उत्तरार्द्ध से समझ सकते हैं। इन सब प्रकृतियों का क्षय किस क्रम से व किस विधान से होता है इसका संक्षिप्त विवरण इस पुस्तक में दिया जायेगा।

प्रश्नावली

१. कर्मबंध किस प्रकार होता है ?
२. मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ कौन-कौन हैं ?
३. कर्म प्रकृतियों के क्षय का प्रारंभ कहाँ होता है।

पाठ २—सम्यक्त्वघातक प्रकृतियों का विच्छेद

कर्मों के क्षय का प्रारंभ क्षायिक सम्यक्त्व में होता है। सम्यक्त्व-लब्धि नामक पुस्तक में अन्तिम पाठ क्षायिक सम्यक्त्व के वर्णन से यह

जानना कि कर्मभूमिज मनुष्य तीर्थंकर, अन्य केवली, श्रुतकेवली के निकट क्षायिक सम्यक्त्व के पौरुष को प्रारंभ करता है। सर्वप्रथम अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणाम करके अनतानुबंधी कषाय की ४ प्रकृतियों का विसंयोजन यानें अन्यकषाय प्रकृतिरूप परिणमन कराके इन ४ प्रकृतियों का सादा के लिये अभाव करता हैं। पश्चात् अन्तर्मुहुर्त विश्राम लेकर तीन करणों द्वारा मिथ्यात्व को सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणमा कर, सम्यग्मिथ्यात्व को सम्यक्त्व प्रकृतिरूप परिणमा कर व अन्त में सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करके दर्शनमोह की ३ प्रकृतियों का भी अभाव कर दिया जाता है। इस प्रकार यहां सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है।

वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव यातो इसी भव से शेष सर्व कर्मप्रकृतियों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करता है, या तीसरे भव में शेष कर्मप्रकृतियों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करता है, और नहीं तो चौथे भव में तो नियम से शेष कर्मप्रकृतियों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करता है। इसे तीन भव यों लगते हैं—(१) क्षायिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति का भव, (२) देवगति या नरकगति का भव, (३) मुक्त हो जाने का भव। चार भव इस प्रकार लगते हैं—(१) क्षायिक सम्यक्त्व वाला भव, (२) भोगभूमिज मनुष्य या तिर्यंच का भव, (३) देवगति का भव, (४) मुक्त जाने का भव। यदि किसी मनुष्य ने पहिले नरकायु, तिर्यंगायु, मनुष्यायु बांध ली हो, फिर क्षायिक सम्यक्त्व हो जावे तो उसे नरक (पहिला नरक) भोगभूमिज मनुष्य या तिर्यंच में उत्पन्न होना पड़ता है। क्षायिक सम्यक्त्व के पौरुष वाले ने देवायु पहिले बांधी हो तब या कोई आयु न बांधी हो और आयु बंधे तो देवायु ही बांधेगा सो यों देव में उत्पन्न होता है।

प्रश्नावली

१. क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करके यह जीव कितने भवों में मोक्ष पाता है?

२. कर्मप्रकृतियों के क्षय का प्रारम्भ किस स्थिति में होता है?

३. क्षायिक सम्यग्दृष्टि को मुक्ति पाने में ४ भव कैसे लग पाते हैं?

पाठ ३—तीन आयु का विच्छेद

क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उसी भव में या तीसरे भव में या चौथे भव में, जिस भव से भी मोक्ष पाना हो उस भव में केवल भुज्यमान मनुष्यायु रहती है, इस भव्यजीव के नरक, तिर्यंच व देव आयु का बंध नहीं है, बंध तो केवलमनुष्यायुका किया था जो अब भुज्यमान है। यों इस मोक्षगामीजीव के केवल मनुष्यायु है। सो यहाँ तीन आयुका विच्छेद स्वयं है यानें जो मोक्ष जावेगा उसके अन्य किसी भी आयु का सत्त्व नहीं है, उसके केवल भुज्यमान मनुष्यायु ही है। चरमशरीरी जीव के यदि पूर्व भव से आया हुआ सम्यक्त्व है तो उसके जन्म से ही १० प्रकृतियां नहीं है दर्शनमोहकी ३, अनंतानुबंधी ४, नरकायु, तिर्यगायु व देवायु। जिस चरमशरीरी के अभी क्षायिक सम्यक्त्व नहीं है, उसके क्षायिक सम्यक्त्व होने से पहिले तीन आयु नहीं, फिर क्षायिक सम्यक्त्व होने पर ७ प्रकृतियों का भी अभाव हो जाना, तब इसके १० प्रकृतियों का अभाव हैं।

सो क्षायिक सम्यग्दृष्टि चरमशरीरी के आठवें गुणस्थान तक १० प्रकृतियाँ नहीं है। यहाँ यह भी जानना किसी चरमशरीरी के जो तीर्थंकर नहीं होता उसके तीर्थंकर प्रकृति का भी सत्त्व नहीं है। जिसने आहारक शरीर व आहारकाङ्गोपाङ्गनामकर्म का बन्ध नहीं किया उसके ये दो कृतियाँ भी नहीं होतो।

यहाँ नाना जीवों को अपेक्षा विचार किया जा रहा है। इस कारण सामान्यतया यह समझना कि क्षायिक सम्यग्दृष्टि चरमशरीरी जीव के १० प्रकृतियों का अभाव है, शेष १३८ प्रकृतियों का सत्त्व है उसका क्षय किस प्रकार होगा यह बात आगे कही जावेगी।

प्रश्नावली

१. चरमशरीरी जीव के कितनी आयुकर्म प्रकृतियों का सत्त्व हो सकता है?

२. क्या अपूर्वकरण पर्यन्त सभी क्षायिक सम्यग्दृष्टि चरमशरीरी के १३८ का सत्व रहता है ?

३. चरमशरीरी के श्रेणी से पहिले १० प्रकृतियों का विच्छेद किस तरह संभव है ?

पाठ ४—सातिशय अप्रमत्तविरत व अपूर्वकरण गुणस्थान

चरमशरीरी क्षायिक सम्यग्दृष्टि मुनि सातिशय अप्रमत्त विरत होकर चारित्र मोह के क्षपण कार्य के प्रारंभ के अर्थ अधःकरण परिणाम में आता है। यहाँ प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता से बढ़ता हुआ समय-समय प्रति प्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा क्रम लेकर चतुःस्थानिक (अमृत मिश्री शक्कर गुड़वत्) अनुभाग बंध होता है, किन्तु अप्रशस्त प्रकृतियों का अनन्तवें भाग का क्रम लेकर द्विस्थानिक (निम्ब कांजीवत्) अनुभाग बंध होता है। यहाँ संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण (नवीन बध की कम कम स्थिति पड़ना) होते हैं। यहाँ अन्य जीव के नीचले समयवर्ती भावन के समान अन्य जीव के कुछ ऊपरले समयवर्ती भाव होते हैं, इस कारण इस परिणाम को अधःकरण कहते हैं।

अधःकरण का काल समाप्त होने पर इस मुनि के अपूर्वकरण परिणाम होता है। यह वह अपूर्वकरण जिसे आठवां गुणस्थान कहा है। यहाँ गुणश्रेणि, गुणसंक्रम, स्थितिखंडन, अनुभागखडन, स्थितिबंधापसरण व अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रशस्तरूप होने लगना ये सब विशिष्टकार्य चारित्र-मोह के क्षय के प्रसंग में होने में लगते हैं। यहाँ अपूर्वकरण से गुणश्रेणी प्रारंभ होती है जिसका आयाम (काल) अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्म-सांपराय व क्षीणमोह इन चार गुणस्थानों का मिलकर जो काल है उससे भी कुछ अधिक है। गुणश्रेणि में असंख्यात गुणाक्रम लिये हुए उपरितन स्थिति के निषेक नीचे के निषेकों में मिला मिलाकर स्थिति का खंडन किया जाता है। एक एक स्थिति खंड के काल में असंख्यात अनुभाग खंड

हो जाते हैं। खडन विधान में निक्षेप अतिस्थापना आदि समझने के लिये सम्यक्त्वलब्धि में देख लेना।

अपूर्वकरण गुणस्थान में संख्यात हजारों स्थितिबंधापसरण होते हैं इन बंधापसरणों के कारण अपूर्वकरण गुणस्थान के समान समान ७ भाग करके उनमें बंध-विच्छेद के अनुसार बंध विच्छेद देखें—प्रथम भाग के अन्त में निद्रा प्रचला इन दो प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है। यहां ही निद्रा प्रचला का द्रव्य बध्यमान चक्षुदर्शनावरणादि ४ दर्शनावरण प्रकृतियों का संक्रान्त हो जाता है। छठे भाग के अंत में देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियकशरीर, आहारक शरीर, तैजसशरीर, कार्माणशरीर, इन्हीं के बंधन, इन्हीं के संघात, वैक्रियकाङ्गोपाङ्ग, आहारकाङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रसंस्थान, ८ स्पर्शनामकर्म, ५ रसनामकर्म, २ गंधनामकर्म, ५ वर्णनाम कर्म, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिरनामकर्म, शुभनामकर्म, सुभगनामकर्म, सुस्वरनामकर्म, आदेयनामकर्म, निर्माणनामकर्म, तीर्थंकर नाम इन ५६ प्रकृतियों की अर्थात् गर्भित करने योग्य को गर्भित कर ३० प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति हो जाती है। फिर पूर्ववत् संख्यात हजार स्थितिबंधापकर्ष होने पर अन्तिमभाग के अन्त में हास्य रति भय जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है। इस अपूर्वकरण गुणस्थान में ऊपरले समयवर्ती मुनियों के भाव नीचले समयवर्ती मुनियों के भाव से ऊंचे ही होते हैं इस कारण इसे अपूर्वकरण कहते हैं।

प्रश्नावली

१. सातिशय अप्रमत्तविरत में कौन सा करण होता है और वहां क्या विशेष बात होती हैं ?

२. अपूर्वकरण में क्या क्या विशेष कार्य होते हैं उनका संक्षिप्त प्रभाव बताओ ?

३. अपूर्वकरण गुणस्थान में कब कितनी प्रकृतियों का क्षय होता है।

पाठ ५—अनिवृत्तिकरण में स्थितिबंध व स्थिति सत्त्व का दिग्दर्शन

अपूर्वकरण का काल समाप्त होते ही अनिवृत्तिकरण परिणाम होता है इसे यहाँ अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं। अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अन्य ही विशेष प्रकार से स्थितिकाण्डकघात व अनुभागकाण्डकघात होते हैं, स्थितिबंध भी विशेष हीन होकर होता है। यहां ही अप्रशस्तोपशम, निधत्ति, निकाचना ये तीन करण व्युच्छिन्न हो जाते हैं अर्थात् अब सभी कर्मप्रकृतियाँ उदय संक्रमण उत्कर्षण अपकर्षण के योग्य हो जाती हैं।

अनिवृत्तिकरण में संख्यात सजार स्थितिबंधापसरण होते होते जब अनिवृत्तिकरण के संख्यात बहुभाग व्यतीत हो जाते हैं तब चारित्र मोह का स्थितिबंध एक हजार सागर का ४/७, ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय व अंतराय का बंध ३/७ का, नामकर्म व गोत्रकर्म का २/७ रह जाता है। फिर संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों में घटते घटते स्थितिबंध चारित्र मोहनीय का ४/७ सागर, चारकर्म का ३/७ सागर, नाम गोत्र का २/७ सागर रह जाता है। फिर संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण व्यतीत होने पर चारित्र मोह का २ पल्य, चार कर्म का १॥ पल्य, नामगोत्र का १ पल्य रह जाता है। स्थितिबंधापसरण के साथ साथ स्थितिसत्त्व भी घटता चला आ रहा था सो यहां कर्मों का स्थितिसत्त्व पृथक्त्व (७–८) लाख सागर रह जाता है।

इसके पश्चात् विशुद्धि के बल से अल्प बहुत्व का क्रम बदल जायगा संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण व्यतीत होने पर स्थितिबंध चारित्र मोह का १ पल्य, अवशिष्ट ६ कर्मों के पल्य का संख्यातवां भाग रह जाता है। इस प्रकार घटते घटते जब चारित्र मोहनीय का स्थितिबंध पल्य का असं-

ख्यातवां भाग मात्र नाम गोत्र का उससे कम, किन्तु चार कर्मका उससे
असंख्यात गुणा रह जाता है तब आयुके बिना ७ कर्मोंकी स्थिति पृथक्त्व
हजार सागर रह जाती है। यह स्थितिनिर्जरा अपूर्वकरण से ही स्थिति
काण्डकघात द्वारा होती चली आ रही है साथ ही अनुभागकाण्डक घात
द्वारा अनुभाग की भी अनंतगुणा अनंतगुणा हानि होती आ रही है।
पश्चात् ऐसे ही अल्पबहुत्व क्रम से संख्यात हजार स्थिति बंधापसरण गुज-
रनेपर नाम गोत्रका कम, मोहका उससे असंख्यात गुणा, चार कर्म का
उससे असंख्यात गुणा है। ऐसे ही संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण गुजरने
पर स्थितिबंध मोहका सबसे कम, नाम गोत्र का उससे असंख्यात गुणा,
चार कर्म का उससे असंख्यातगुणा है। पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंधा-
पसरण होने पर स्थितिबंध चारित्र मोहका सबसे कम, नाम गोत्र का
उससे असंख्यात गुणा, शेष ३ घातिया कर्म का उससे असंख्यात गुणा व
वेदनीय का उससे असंख्यात गुणा है। ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंधाप-
सरण गुजरने पर चारित्र मोहका सबसे कम, तीन घातिया कर्मों का
उससे असंख्यात गुणा, नाम गोत्र का उससे असंख्यात गुणा, वेदनीय का
उससे कुछ अधिक है। विशुद्धि के बल से उक्त अल्पबहुत्व में पापप्रकृतियों
का बंध क्रम बदल कर सबसे कम हो जाता है। यहाँ स्थितिसत्त्व भी स्थिति
बंधकी तरह अन्य-अन्य प्रकार अल्पबहुत्व होते होते चारित्रमोहनीय का
सबसे कम, उससे असंख्यात गुणा तीन घातिया का, व उससे असंख्यात
गुणा नामगोत्रका, उससे कुछ अधिक वेदनीय का स्थितिसत्त्व रहता है।

प्रश्नावली

१. अनिवृत्तिकरण के प्रथम क्षणमें क्या क्या विशिष्ट कार्य हो जाते हैं?

२. अनिवृत्तिकरण में जब प्रथमबार मोह का स्थितिबंध अन्य कर्मों से कम हो जाता है तब अन्य कर्मों का स्थितिबंध कितना होता है?

३. अनिवृत्तिकरणके अन्तमें स्थितिबंध व स्थिति सत्त्व कर्मों का किस किस प्रकार रहता है ?

पाठ ६—अनिवृत्तिकरण में क्षपरण का दिग्दर्शन

अनिवृत्तिकरण में जब स्थितिबंध पल्यका असंख्यातवां भाग मात्र होने लगता है तब असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने लगती है। पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकाण्डक गुजरने पर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान, माया, लोभ व प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान,माया,लोभ, इन ८ कर्म-प्रकृतियों का परमुखेन अभाव हो जाता है अर्थात् ये ८ पाप प्रकृतियों का द्रव्य इनकी क्षपणा के काल में समय-समय प्रति एक एक फालिका संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ व पुरुषवेद में संक्रमण हो होकर अन्तिमकाण्डकका नाश होते समय आवलिमात्र स्थितिका रह जाता है।

तत्पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण व्यतीत होने पर निद्रा निद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रिय जाति, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण इन १६ प्रकृतियों का द्रव्य इनकी क्षपणा के काल में समय समय प्रति एक एक फालिका संख्यात हजार स्थितिकाण्डकों द्वारा स्वजातीय व अन्यजातीय प्रकृतियों में संक्रमण हो होकर आवलिमात्र स्थितिका रह जाता है। यहाँ मोहनीयकी अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४ इन आठ प्रकृतियों का नाश होने पर १३ चारित्रमोह कर्मप्रकृतियों का सत्त्व रहता, निद्रानिद्रादि ३ दर्शनावरण प्रकृतियोंका नाश होने पर दर्शनावरणकी ६ प्रकृतियों का सत्त्व रहता, नामकर्मकी १३ प्रकृतियों का नाश होने पर नामकर्म की ८० प्रकृतियों का सत्त्व रहता।

प्रश्नावली

१. अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण कषायका क्षय कब और

किस विधिसे होता है ?

२. अनिवृत्तिकरणमें नष्ट होने वाली नामकर्म प्रकृतियों के नाम क्या हैं ?

३. अनिवृत्तिकरणमें निद्रानिद्रादि ३ दर्शनावरण का नाश कब होता है ?

पाठ ७—देशघातिकरण व अन्तरकरण

सर्वघाति प्रकृतियों का जो द्विस्थानगत अनुभागबंध होता था सो विशुद्धिके प्रलय से सर्वघाती अनुभागबंध न होकर देशघाति लतादारु रूप द्विस्थानगत अनुभागबंध हो जाने को देशघातिकरण कहते हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण ४ व प्रत्याख्यानावरण ४ का नाश होने के बाद, निद्रानिद्रादि ३ दर्शनावरणका नाश होने के बाद, नरकगत्यादि १३ नामकर्म प्रकृतियोंका नाश होने के बाद संख्यात हजार स्थितिकाण्ड व्यतीत होने पर मनःपर्यय ज्ञानावरण और दानांतराय कर्मका अनुभागबंध देशघाती हो जाता है। पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत होने पर अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण व लाभान्तरायका अनुभागबंध देशघाती हो जाता है। पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत होने पर श्रुतज्ञानावरण अचक्षुर्दर्शनावरण व भोगान्तराय का अनुभागबंध देशघाती हो जाता है। पश्चात् संख्यात हजार स्थिति काण्डक व्यतीत होने पर चक्षुर्दर्शनावरणका अनुभागबंध देशघाती हो जाता है। पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत होने पर मतिज्ञानावरण व उपभोगान्तरायका अनुभागबंध देशघाती हो जाता है। पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत होने पर वीर्यान्तरायका अनुभागबंध देशघाती हो जाता है। पुरुषवेद व संज्वलन कषायका पहिले ही संयतासंयत आदि गुणस्थानों में देशघाती अनुभागबंध हो गया था। यहाँ स्थितिबंध यथासंभव पल्य का असंख्यात मात्र रह जाता है।

देशघातिकरण के अनंतर संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत होने पर संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ व ९ नोकषाय इन १३ प्रकृतियोंका अन्तरकरण होता है। प्रथम स्थिति व द्वितीय स्थिति में अन्तरायामके निषेकों का क्षेपण होने से अन्तरकरण हो जाता है। संज्वलनकषाय ४ में से जिसका उदय हो व वेद में से जिसका उदय हो ऐसे दो प्रकृतिकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र होती है शेष अर्थात् जिनका उदय नहीं है ऐसी ११ प्रकृतियोंकी प्रथमस्थिति आवलिमात्र है। प्रथमस्थितिमे अन्तरायामके निषेकों का निक्षेपण आगाल है। यहाँ वर्तमान समय व प्रथमस्थिति इसके ऊपर अन्तरायामके निषेक हैं। अन्तरकरणकाल में अन्तरायामके निषेकोका निक्षेपण प्रति समय याने प्रत्येक फालिका निक्षेप्य द्रव्य असंख्यात असंख्यात गुणा है।

प्रश्नावली

१. देशघातिकरणका अर्थ बतावो ?
२. अनिवृत्तिकरण में अंतरकरण कब और किसका कैसे होता है ?
३. ज्ञानावरण की प्रकृतियों में देशघातित्व किस क्रम से होता है ?

पाठ ८—सप्तकरण व अपूर्वस्पर्द्धक

अन्तरकृत् जीवके याने अन्तरकरण होनेके बाद ही तुरन्त प्रथम समय में ये सात करण होते हैं—(१) एकस्थानगत उदय-चारित्रमोहका जो भी उदय (अनुभाग) रहा वह दारुरूप न होकर केवल लतारूप स्थानवाला रहता है। (२) एक स्थानगत बंध-चारित्र मोहका बंध भी दारुरूप न होकर केवल लतारूप अनुभाग वाला रहता है। (३) संख्यवर्षस्थितिबंध मोहनीय का स्थितिबंध पल्य के असंख्यातवें भाग से घटकर संख्यात वर्ष मात्र का स्थितिबंध रह जाता है। (४) आनुपूर्विसंक्रम – स्त्रीवेद व नपुंसकवेदके द्रव्य का पुरुषवेद में संक्रमण होना, पुरुषवेद व छह हास्यादिका संज्वलन क्रोध में संक्रमण होना, क्रोध का मान में संक्रमण होना, मान का माया में

संक्रमण होना, माया का लोभ में संक्रमण होना इस क्रम में परिणमनकर उस द्रव्य का नाश हो जाना, (५) लोभासंक्रम—लोभ का संक्रमण न होना (इसका कारण यह है कि इसका तो साक्षात् क्षय होता है) (६) आवृत्तकरणसंक्रम —नपुंसकवेद को अन्य प्रकृतिरूप परिणमाकर नाश करने का उद्यम,(७, षडावल्यतीतोदीरणा—पहिले बंध होनेके बाद १ आवली व्यतीत होने पर उदीरणा होती थी अब छह आवली व्यतीत हुए बाद उदीरणा होती है।

अनेकों स्थितिकाण्डकघात अनुभागकाण्डकघात आदि हो होकर जहाँ सात नोकषाय के संक्रम काल का अन्तिम समय होना वहाँ पुरुषवेद का अन्तिम स्थितिबंध ८ वर्ष प्रमाण है, संज्वलन चतुष्क का बंध १६ वर्ष प्रमाण है, शेष ६ कर्मोंका (आयुको छोड़कर शेष ६ कर्मों का) स्थितिबंध संख्यात हजार वर्षमात्र है। यहाँ स्थितिसत्त्व चार घातिया कर्मोंका संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है, तीन अघातिया कर्मों का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष प्रमाण है।

संक्रमण, क्षपण होकर जब तीनों वेद नहीं रहते तब यह जीव अपगतवेद (वेद रहित) होता है। अनिवृत्तिकरण में अपगतवेद के प्रथम समय से अश्वकर्णकरण सहित संज्वलन कषाय का अपूर्व स्पर्द्धक करण होता है। अश्वकर्ण के प्रारंभ समय में संज्वलन चतुष्कका स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्षमात्र है, स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम १६ वर्ष मात्र है। अपूर्व स्पर्द्धक में अनुभाग पहिले से बहुत हीन होता है, किन्तु क्रोध से मान के अपूर्वस्पर्द्धक कुछ अधिक, मान से माया के अपूर्वस्पर्द्धक कुछ अधिक, माया से लोभ के अपूर्वस्पर्द्धक कुछ अधिक होते हैं।

अपूर्वस्पर्द्धक के प्रथम अनुभाग काण्डकघात हो जाने पर लोभ का अनुभागसत्त्व सबसे कम रह जाता है उससे अनंतगुणा अनुभागसत्त्व माया का, उससे अनंतगुणा अनुभागसत्त्व मान का, उससे अनंतगुणा अनुभागसत्त्व क्रोध का रह जाता है, जबकि अपूर्वस्पर्द्धक क्रोध के कम है उससे अधिक अधिक मान, माया, लोभ के हैं।

प्रश्नावली

१. अन्तरकरण कर चुकते ही अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कितने विशेषकरण होते हैं। नाम सहित बताओ।

२. अपूर्वस्पर्द्धक करण कब होता है और इस करण में होना क्या है ?

३. सात नोकषाय के संक्रमण काल के अंत समय में स्थितिबंध व स्थितिसत्व किसका कितना रह जाता है।

पाठ ९—बादरकृष्टिकरण

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अपूर्वस्पर्द्धक का काल व्यतीत होने पर कृष्टिकरणकाल आता है। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का अपना अपना पूर्व व अपूर्वस्पर्द्धकका जो द्रव्य है उसमें से आकर्षित द्रव्य के बहुभाग की क्रमशः क्रोध, मान, माया, लोभ की बादरकृष्टि होती है। अनुभाग की हीनता की अपेक्षा कृष्टियोंका विभाग इस प्रकार है—एक एक कषाय के विषय में तीन तीन संग्रहकृष्टि हैं। एक एक संग्रह कृष्टि में अंतरकृष्टि अनंत हैं। एक प्रकार से बढ़ता गुणकाररूप अंतरकृष्टियों के समूह को संग्रहकृष्टि कहते हैं। यहाँ नोकषाय संबंधी सबकृष्टियां क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में प्राप्त हैं।

श्रेणि में संज्वलन क्रोध के उदय सहित चढ़ने वाले के चारों कषायों की १२ संग्रहकृष्टि होती हैं। मानोदय सहित चढ़ने वाले के क्रोध का पहिले संक्रमण होकर क्षय हो जाने से तीन कषाय की ९ संग्रहकृष्टि होती है। मायोदय सहित चढ़ने वाले के क्रोध, मान का पहिले ही संक्रमण होकर क्षय हो जाने से दोकषायों की ६ संग्रहकृष्टि होती हैं। लोभोदयसहित चढ़ने वाले के पहिले ही क्रोध, मान, माया का संक्रमण होकर क्षय हो जाने से लोभ कषाय की ३ संग्रहकृष्टि होती हैं। इन कृष्टियों द्वारा सत्व में से अपकर्षित द्रव्यका संक्रमणादि कर क्षपण किया जाता है।

कृष्टिकरणका काल अंतर्मुहूर्त है इस काल में समय समय प्रति एक एक स्थिति बंधापसरणमें अंतर्मुहूर्तअंतर्मुहूर्त घटघटकर अंतमें संज्वलन चतुष्क का बंध अन्तर्मुहूर्त अधिक ४ माह का है (अपूर्वस्पर्द्धककरण कालके अन्तमें यह बंध ८ वर्ष का होता था।) यहाँ अन्य कर्मोंका स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष मात्र होता है। इस समय मोहनीयका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त अधिक ८ वर्षमात्र रह गया (पहिले संख्यात हजार वर्षमात्र था)। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है, तीन अघातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। कृष्टियोंमें प्रतिपद अनंतगुणा अनुभाग क्रम होता है।

प्रश्नावली

१. मायोदय सहित श्रेणि में चढ़ने वाले के मोहक्षय करने के अर्थ कितनी संग्रहकृष्टियाँ बनाई जाती हैं ?

२. कृष्टिकरण काल के अंत में किस किस कर्मका स्थितिबंध व स्थितिसत्त्व कितना रहता है ?

३. अपूर्वस्पर्द्धक के प्रथम अनुभागकाण्डकका घात होने पर कषायोंका अनुभागसत्त्व कितना रह जाता है ?

पाठ १०—कृष्टिवेदन

कृष्टिकरणकाल के अनंतर कृष्टिवेदनकाल आता है। कृष्टिकरणकाल में पहिले लोभ की, बाद में माया की, बाद में मान की, पश्चात् क्रोध की इस क्रम से कृष्टि थी। वेदन में पहिले क्रोध की, बाद मानकी, बाद माया की, पश्चात् लोभकी कृष्टि का अनुभव होता है। कृष्टिकरण में जो तृतीय संग्रह कृष्टि है, वेदन में वह प्रथम संग्रहकृष्टि है।

कृष्टिवेदक जीव काण्डकविधि के बिना ही बारह संग्रह कृष्टियों के अनुभाग के द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टियों को नष्ट कर देता है। कृष्टिकरण काल के अंत समय तक तो अन्तर्मुहूर्तकाल करिनिष्पन्न काण्डक-

विधान से नीचे निषेकों में निक्षिप्त होकर अपकर्षित कर्म द्रव्य नष्ट होता था, अब कृष्टिवेदन के पहिले ही समय से समय समय प्रति अपघात होने लगा।

क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि का वेदक जीव समय समय प्रति असंख्यातवें असख्यातवें भाग मात्र क्रम से प्रथम संग्रह कृष्टिके द्विचरम समय तक नष्ट करता जाता हैं, अंत समय में नवकबंध और उच्छिष्टावाले बिना इस सग्रह कृष्टिकी सर्व कृष्टियों का नाश हो जाता है। और अवशिष्ट द्रव्य द्वितीयसग्रहकृष्टि में संक्रान्त होकर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार आगे ही संग्रह कृष्टियों में कृष्टिका उदय बंध, घात, अपूर्वकृष्टि आदि यथासभव घटित करना।

क्रोध की प्रथम संग्रह कृष्टिवेदक के अंत समय में संज्वलन चतुष्कका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त कम १०० दिन है (पहिले ४ माह था)। संज्वलन चतुष्क स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तकम ६ वर्ष ८ माह है (पहिले ८ वर्ष था)। तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त कम १० वर्ष मात्र है। (प्रथम समय में सख्यात हजार वर्ष था)। तीन घातिया कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्षमात्र है। (प्रथमसमय के संख्यात हजारवर्ष से यह बहुत अधिक कम है)। अघातिया कर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्षमात्र है। आयु बिना तीन अघातिया कर्मों का स्थितिसत्त्व असख्यात वर्षमात्र है। ऐसे ही द्वितीयादिकृष्टियों में बंध व सत्त्व की हीनता व उस द्रव्य का आगाल प्रत्यागाल द्वारा विक्षेपण आदि सब घटित कर लेना चाहिये। ये सब अपूर्व-अपूर्व कार्य होते होते कृष्टियों का अभाव होता जाता है।

क्रोध की द्वितीय संग्रह कृष्टिकेवेदककालके अंत समयमें संज्वलनचतुष्क का स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त कम ८० दिन का, संज्वलनचतुष्क का सत्त्व अंतर्मुहूर्त कम ५ वर्ष ४ माह का, तीन घातियकर्मोंका स्थितिबंध पृथक्त्व वर्षमात्र, अवशिष्ट अघातिया कर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्षमात्र तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व सख्यात हजार वर्ष, आयु बिना ३ अघातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष रहता है। क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि

समाप्त होने पर जीव तृतीय संग्रहकृष्टि का वेदक होता है।

क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि के समाप्त होने पर मानकी प्रथमसंग्रह कृष्टिका वेदक होता है। इसका काल समाप्त होने पर मान की द्वितीयसंग्रह कृष्टिका वेदक होता है। इसके अन्त समय में संज्वलन मान, माया, लोभ का स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त कम ४० दिन का और स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्तकम ३२ माह का होता है। तदनंतर मान की तृतीय संग्रहकृष्टिका वेदक होता है। इसके अन्त समयमें संज्वलन तीनका स्थितिबंध ३० दिन का, स्थितिसत्त्व २४ माहका रहता है।

मान की तृतीय संग्रहकृष्टि समाप्त होने पर मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदक होता है। इस कृष्टिके अंत समयमें संज्वलन माया लोभका स्थितिबंध २५ दिनका तथा स्थितिसत्त्व २० माह का रह जाता है। पश्चात् मायाका द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदन होता है। इस कृष्टि के अन्त समयमें संज्वलन माया लोभका स्थितिबंध २० दिन तथा स्थितिसत्त्व १६ माह का रह जाता है। पश्चात् मायाकी तृतीय संग्रहकृष्टिका वेदन होता है। इसके अन्त समयमें संज्वलन माया लोभका स्थितिबंध १५ दिनका व स्थितिसत्त्व १२ माहका रह जाता है। यहाँ तीन घातिया कर्म का स्थितिबंध पृथक्त्व मास का है, स्थितिसत्त्व यथायोग्य संख्यात हजार वर्षमात्र का है। तीन अघातिया कर्मोंका स्थितिबंध यथायोग्य संख्यात वर्षमात्र है, स्थितिसत्त्व यथायोग्य असंख्यात वर्षमात्र है।

मायाकी तृतीय संग्रहकृष्टिका वेदककाल समाप्त होने पर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदन होता है। इसके अन्त समयमें संज्वलन लोभ का स्थितिबंध व स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त मात्र है, फिर भी स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। तीन घातियाकर्मों का स्थितिबंध पृथक्त्व-दिन व स्थितिसत्त्व सख्यात हजार वर्षमात्र है। आयु बिना तीन अघातिया प्रकृतियोंका स्थितिबंध पृथक्त्व वर्षमात्र और स्थितिसत्त्व यथायोग्य असंख्यात वर्षमात्र है। यहाँ लोभ की सूक्ष्मकृष्टि होती है जो लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टिके नीचे

है। सूक्ष्मकृष्टियों में संविधि लोभ का कृषीकरण हो जाता है। लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टिका वेदककाल सब क्रमशः समाप्त हो जाता है। इसकी समाप्ति से समयाधिक आवलि पहिले अनिवृत्तिकरणका अंतसमय होता है, तृतीय संग्रहकृष्टिका सब द्रव्य और द्वितीय संग्रहकृष्टिके उत्तरार्द्धका सब द्रव्य (नवेक समय प्रबद्ध बिना) सूक्ष्मकृष्टिरूप हो जाता है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अंतसमय में संज्वलन लोभ का जघन्य बंध व जघन्य स्थितिसत्त्व (अन्तर्मुहूर्तमात्र) है। यहीं मोह बंधका विच्छेद हो जाता है। यहाँ तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबंध कुछकम १ दिन, स्थितिसत्त्व यथायोग्य संख्यात हजार वर्ष है। तीन अघातिया कर्मों का स्थितिबंध कुछ कम १ वर्ष का, स्थितिसत्त्व यथायोग्य असंख्यात वर्ष मात्र है।

प्रश्नावलि

१. कितनी संग्रहकृष्टियों द्वारा मान कषाय का संक्रमण, क्षय होता है?

२. क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टिके वेदन कालके अंतमें किन-किन कर्मों का कितना स्थितिसत्त्व रहता है।

३. अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अन्तमें किस-किस कर्मका कितना स्थितिसत्त्व व स्थितिबंध रहता है।

पाठ ११—सूक्ष्मकृष्टिवेदन

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का काल समाप्त होने पर अर्थात् बादरकृष्टिवेदककाल समाप्त होने पर सूक्ष्मकृष्टिका वेदन होता है अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान होता है। यहाँ गुणश्रेणि, अतर स्थितिखंडन, अनुभाग खंडन आदि विधिवत् समझना। सूक्ष्मसांपरायका काल अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ संज्वलन लोभका नाश होते होते लोभके अन्तिम काण्डकका घात होने पर मोहस्थिति का घात नहीं होता, जितना (अंतर्मुहूर्त के अंदर) स्थितिसत्त्व

है सो अनुसमयापवर्तमान सूक्ष्मकृष्टिरूप अनुभाग को प्राप्त हो जाता है। उसका वेदनकाल समाप्त होते ही सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान समाप्त हो जाता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्परायसंयम होता है जिसके प्रताप से संज्वलन लोभकी सूक्ष्मकृष्टि भी समाप्त हो जाती है।

सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के अन्त में अब मोहनीय कर्मका लेशमात्र भी निषेक नहीं रहता, सर्वक्षयको प्राप्त हो गये हैं। मोहनीय के क्षय होने का यह क्रम रहा—(१) क्षायिक सम्यक्त्व होते समय अनंतानुबंधी क्रोध मान, माया, लोभ व दर्शन मोहकी तीनों, इन ७ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है, (२) अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान माया, व हास्यादि ६ (नोकषाय सब इस प्रकार २० प्रकृतियों का क्षय हो जाता है। (३) सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के अन्त में संज्वलन लोभ का क्षय हो जाता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें जघन्य स्थितिबंध नाम व गोत्रका आठ मुहूर्तमात्र, वेदनीयका १२ मुहूर्तमात्र, तीन घातिया कर्मोंका अन्तर्मुहूर्त मात्र है। यहाँ ही तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तमात्र हैं। तीन अघातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षमात्र है। मोह का स्थितिसत्त्व क्षयके सन्मुख है।

प्रश्नावलि

१. सूक्ष्मकृष्टिकरण किस गुणस्थान में होता है और सूक्ष्मकृष्टिका वेदन किस गुणस्थान में होता है?

२. सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें किस कर्मका कितना स्थितिसत्त्व व स्थितिबंध रहता है?

३. मोहकर्मकी प्रकृतियोंका किस-किस प्रसंग में किन-किन का क्षय होता है?

पाठ १२—क्षीणकषाय

समस्त चारित्र मोहनीय कर्मके क्षयके अनन्तर क्षीणकषाय कहलाता है। अब यहाँ स्थितिबंध अनुभागबंध रंच भी नहीं हो सकता, केवल योग का निमित्त होने से सातावेदनीय प्रकृतिका प्रकृतिबंध व प्रदेशबंध होता है सो भी ईर्यापथ है याने प्रथम समय में सातावेदनीय कर्मका आस्रव हुआ और द्वितीय समयमें निर्जर गया, झड़गया, अलग हो गया। यहाँ गुणश्रेणी, संक्रमण, निक्षेप, अतिस्थापना, स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डक घात आदि समस्त प्रक्रिया अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में हुई विधिकी तरह घटित करना। मोहनीय कर्मका तो क्षय हो चुका और आयुकर्मका क्षपण नहीं होता सो यहाँ शेष ६ कर्मों के द्रव्य का अपकर्षण होता है। यहाँ क्षीण कषाय के प्रथम आदि समयों में अपकर्षण किया जा रहा द्रव्य का प्रमाण समान है, क्योंकि विशुद्धि समान है। उस द्रव्यको गुणश्रेणि आदि विधि से द्रव्यको हीन किया जाता है।

क्षीणकषाय गुणस्थानमें प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त तो पहिला ही पृथक्त्व वितर्कवीचार नामका शुक्ल ध्यान होता है, और क्षीणकषाय गुणस्थानके कालका संख्यातवां भाग शेष रहने पर एकत्व वितर्क अवीचार नामका द्वितीय शुक्लध्यान पाया जाता है। यहाँ संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत होने पर क्षीणकषाय कालक संख्यात बहुभाग व्यतीत होने पर अवशिष्ट एक भाग कालमें तीन घातिया कर्मों का अन्तिम काण्डक क्षपण के अर्थ निकलता है और क्षीणकषाय का जितना काल शेष रहा उतने प्रमाण घातिकर्म द्रव्य के बिना शेष समस्त घातिकर्म स्थिति का नाश हो जाता है। तब से स्थितिकाण्डक नहीं होता, इसकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

क्षीणकषाय का जब लघु समय रह गया जब अन्तिमकाण्डकघात हो गया, तब से यह कृतकृत्य छद्मस्थ कहलाता है। कृतकृत्य छद्मस्थ काल में तीन घातिया कर्मों का स्थितिकाण्डकघात नहीं, किन्तु उदयावलि के बाहर

स्थित द्रव्य उदयावलि में आकर उदीर्ण हो जाता है यह कार्य समयाधिक आवलिमात्र काल शेष रहने तक होता है। बाद में उदीरणा नहीं, उदय द्वारा काल समाप्त हो जायगा। क्षीणकषाय के द्विचरम समयमें निद्रा व प्रचला नामक दर्शनावरणकी प्रकृतियोंका क्षय हो जाता है। तथा क्षीणकषायके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण ५, शेषके दर्शनावरण ४, अन्तराय ५ इन १४ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है। यहाँ तीन अघातिया कर्मों का स्थितिसत्त्व पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात वर्ष का है।

क्षीणकषाय गुणस्थान में जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्म याने ज्ञानावरण दर्शनावरण इसमें रहने वाले अर्थात् केवलज्ञान शून्य। इस गुणस्थान के अन्त इन आवरणोंका क्षय होता है। जब तक यह जीव छद्मस्थ है इसका शरीर निगोद सहित है और यही जीव केवलज्ञानी है तब इसका शरीर निगोदरहित है। इस शरीर के निगोदरहित होने की प्रक्रिया क्षीणकषाय गुणस्थानमें होने लगती है। क्षीणकषायके प्रथम समयमें निगोद जीव अनंत मरण करते हैं इससे अधिक दूसरे समय में मरण करते हैं। कितने अधिक ? प्रथम समयमें जितने निगोद मरण करते हैं उनकी संख्या में आवलीका असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो लब्ध हो उतने अधिक। यह क्रम पृथक्त्व आवली पर्यन्त चलता है। इसके पश्चात् पूर्व समय में जितने निगोद मरण करने वाले हैं उस संख्यामें संख्यातका भाग देने पर जो लब्ध हो उतने अधिक मरते हैं। यह क्रम क्षीणकषायका काल आवलिका असंख्यातवां भाग शेष रहने तक चलता है। तत्पश्चात् क्षीणकषायके अन्त समय पर्यन्त समय-समय प्रति पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा निगोद जीव मरते हैं। इस प्रकार सर्व निगोद जीवों का अभाव अन्तमें हो जाता है और यह भव्य क्षीणकषाय गुणस्थानको पार कर सयोगकेवली (अरहंत भगवान) हो जाता है। यहाँ निगोद जीवोंके मरणकी बात सुनकर अहिंसा में संदेह नहीं करना, क्योंकि निगोद जीवोंकी आयु एक श्वास में १८ वां भाग की है याने एक सेकिंड में २३ वें या २४ वें भागकी है सो ये अपनी आयुक्षय से मरते रहते हैं। यहाँ नवीन निगोद जीव कम कम उत्पन्न होने व बिल-

कुल उत्पन्न न होने के कारण यह सब हिसाब बना है। यह निगोदरहित होनेकी प्रक्रियामें निमित्त एकत्ववितर्क अवीचार शुक्ल ध्यान है।

प्रश्नावलि

१. क्षीणकषाय में कर्मक्षय किस ध्यान में होता है ?

२. कृतकृत्य छद्मस्थ किसे कहते हैं और उसके कब-कब कितनी प्रकृतियोंका क्षय होता है ?

३. मुनिका शरीर निगोदरहित कब और कैसे हो जाता है ?

पाठ १३—सयोग केवली

घातिया कर्मोंके नष्ट होते ही अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतआनन्द व अनन्तशक्ति रूप अनंतचतुष्टयकी उत्पत्ति हो जाती है। अनन्त चतुष्टय सम्पन्न इस भव्य आत्माके अभी योग है इस कारण इसे सयोग-केवली कहते हैं। ज्ञानावरणका क्षय होने से केवलज्ञान (अनंतज्ञान) हुआ। दर्शनावरणका क्षय होने से केवल-दर्शन हुआ। नव नोकषाय और दानान्तरायादि ४ अन्तरायकर्मके क्षयसे अनन्त आनन्द उत्पन्न हुआ। वीर्यान्तरायकर्मके क्षयसे अनंतशक्ति उत्पन्न हुई। यहां प्रभु का ज्ञान समस्तलोकालोकका जाननहार है और उन्हें आत्मोत्थ सहज इन्द्रियातीत अनन्त आनन्दका वर्तन है। ऐसा ही ज्ञान व आनन्द सदा काल रहेगा। केवली भगवानके एक समय मात्रका सातावेदनीय का आस्रव है सो ही उदयरूप है, असातावेदनीयका सत्त्व भी सातावेदनीय रूप परिणम जाता है। वीतराग होने के कारण सांसारिक सुख दुःखका अभाव है। केवली भगवानके कवलाहार नहीं, क्षुधातृषादि वेदना नहीं। सयोग केवली भगवानके शरीरमें प्रति समय शुभ औदारिक शरीर संबंधित नोकर्म वर्गणा चारों ओर से आती रहती हैं। भव्य जीवों के भाग्य और प्रभुके योगवश बिना इच्छाके मेघवत् विहार होता रहता है, समवशरण गंधकुटी में स्थित होकर दिव्यध्वनि

भी खिरती है जिससे प्राणियों का महोपकार होता है।

तीर्थंकर सयोगकेवली की स्थिति उत्कृष्ट कुछ कम कोटिपूर्व की है, जघन्य पृथक्त्व वर्षमात्र है। सामान्यकेवली की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र है। सयोगकेवलीके प्रथम समय से लेकर उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि निर्जरा होती है जिसमें वेदनीय नाम व गोत्रकर्म के निषेकोंका अपकर्षण, निक्षेप, अतिस्थापना आदि विधियों से कर्म निषेकों की स्थिति आदि का घात होता रहता है।

सयोगकेवली गुणस्थान में उनकी आयु जब अन्तर्मुहूर्त शेष रहती है, तब समुद्घात होता है। मूल शरीर को न छोड़ते हुए आत्मप्रदेशों का बाहर फैल जाने को समुद्घात कहते हैं। केवली समुद्घात में प्रथम समय में आत्मप्रदेश कायोत्सर्ग में देहकी मोटाई प्रमाण विष्कंभ में और पद्मासन होने पर इससे तिगुणे प्रमाण विष्कम्भ में दंडाकार ऊपर नीचे वातवलयों को छोड़कर चौदहराजू प्रमाण फैल जाते हैं। द्वितीय समयमें अगलबगल वातवलयों को छोड़कर लोकमें जहाँ तक स्थान हो कपाटाकार फैल जाते हैं। तृतीय समय में प्रतरसमुद्घात में आगे पीछे वातवलयों को छोड़कर लोक में सर्वत्र फैल जाते हैं। चतुर्थ समय में लोकपूरण समुद्घात होता है, इस समय में आत्म प्रदेश वातवलयों में भी फैल जाते हैं। पश्चात् पांचवें समयमें प्रतरसमुद्घात के समान, फिर छठे समयमें कपाटसमुद्घात के समान, फिर सातवें समयमें दंड समुद्घात के समान प्रदेश फैले होते हैं। पश्चात् आठवें समयमें शरीर में पूर्णतया प्रवेश हो जाता है।

प्रथम समय दंडसमुद्घात में नामगोत्र वेदनीय कर्मका सत्त्व पूर्वस्थित (पल्यका असंख्यातवां भाग मात्र) सत्त्वमें असंख्यातका भाग देनेसे जो लब्ध हो उसके बहुभाग कम हो जाते हैं। ऐसे ही अनंतभाजित का अनुभाग का बहुभाग क्षीण हो जाता है। द्वितीय समय में कपाट-समुद्घात में असंख्यात भाजितके बहुभाग अनुभाग नष्ट हो जाते हैं। अनंतभाजित अनुभाग के बहुभाग अनुभाग नष्ट हो जाते हैं। तीसरे समय कपाट समुद्घात में इसी प्रकार और भी स्थितिसत्त्व व अनुभागसत्त्व हट हो जाता है। चौथे समय

लोकपूरण समुद्घातमें इसी प्रकार और भी स्थितिसत्त्व व अनुभाग सत्त्व हट जाता है। इन चार समयोंमें समय-समय प्रति स्थितिखंड अनुभागखड आदि होकर समुद्घात पूर्ण होने तक वेदनीय, नाम व गोत्रकर्म का स्थिति प्राय: आयुके स्थितिसत्त्वके समान हो जाता है।

पश्चात् गुणश्रेणि विधिसे तथा कृष्टिकरण व कृष्टिवेदन विधिसे योग की निर्जरा होती है याने योग हीन होता जाता है। योगके अपूर्वस्पर्द्धक वादरकृष्टिके व्यतीत होने पर जब योगभी सूक्ष्मकृष्टिके वेदनका काल आता है, तब सूक्ष्म क्रियाड प्रतिपाति नामका शुक्ल ध्यान प्रकट होता है। अन्य योग हट हटकर यहाँ मात्र काययोग ही रहता है।

सयोगकेवली गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर वेदनीय नाम व गोत्रकर्मकी अंतस्थितिकाण्डक निकलता है सो उसके द्वारा शेष आयु के काल के निषेकों को छोड़कर अवशेष सर्वस्थिति समय-समय प्रति असंख्यात गुणा द्रव्य झड़ जाता है। इस प्रकार होकर सयोगकेवली के अन्त समयमें अघातियों की अंतिम काण्डककी अन्तिम फालिका पतन, समस्त योग निरोध और सयोगकेवली गुणस्थान की समाप्ति ये कार्य एक साथ हो चुकते हैं। तब अयोगकेवली गुणस्थान प्रकट होता है।

प्रश्नावलि

१. किस-किस घातिया कर्मके नाश से कौन-कौन गुण प्रकट होता है ?

२. सयोगकेवली की उत्कृष्टि व जघन्य स्थिति कितनी होती है ?

३. केवली समुद्घात कितने समय को होता है और किस प्रकार होता है ?

पाठ १४—अयोगकेवली

तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति आयुके समान होने पर, समस्त योग के नष्ट हो चुकनेपर ये जिनेन्द्रदेव अयोगकेवली गुणस्थानमें आते हैं। इनके समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति नामक शुक्लध्यान होता है। यहाँ ध्यानका कहना उपचारसे है जैसे कि सयोगकेवली गुणस्थानमें ध्यान उपचारसे है। अवशेष कर्मनिर्जराका कारणभूत स्वात्मप्रवृत्ति होनेसे यहाँ ध्यानका उपचार किया गया है। छद्मस्थावस्थामें ध्यान निर्जराका हेतु हुआ करता था। इस शुक्लध्यानका अर्थ है—समुच्छिन्नक्रिय व अनिवृत्ति अर्थात् जहाँ मन-वचन कायकी क्रिया समस्त समुच्छिन्न है तथा जहां निवृत्ति याने प्रतिपात नहीं है। यहां योग न होनेसे यह भव्य निरास्रव है परिपूर्णशीलेश है।

अयोगी गुणस्थानका काल इतना है जितना कि 'अ इ उ ऋ लृ" इन पाँच ह्रस्व अक्षरोंके शीघ्र उच्चारण करने में लगता है। यहां एक-एक समयमें एक-एक निषेकगलनसे (अध:स्थितिगलनसे) क्षीण हो होकर अयोगकेवलीके द्विचरम (उपान्त्य) समयमें शुक्लध्यानाग्निवलसे ७२ प्रकृतियाँ नष्ट हो जाती हैं—(१) अनुदयरूप वेदनीय, (२) देवगति नामकर्म, (३-७) शरीरनामकर्म ५, (८-१२) बंधननामकर्म ५, (१३-१७) संघातनामकर्म ५, (१८-२३) संस्थान नामकर्म ६, (२४-२६) अङ्गोपाङ्गनामकर्म ३, (२७-३२) संहनननामकर्म ६, (३३-५२) वर्णादिक नामकर्म २०, (५३) देवगत्यानुपूर्वी, (५४) अगुरुलघु नामकर्म, (५५) उपघातनामकर्म, (५६) परघातनामकर्म, (५७) उच्छ्वास नामकर्म, (५८-५९) विहायोगतिनामकर्म २, (६०) अपर्याप्त, (६१) प्रत्येकनामकर्म, (६२) स्थिरनामकर्म, (६३) अस्थिरनामकर्म, (६४) शुभनामकर्म, (६५) अशुभनामकर्म, (६६) दुर्भगनामकर्म, (६७) सुस्वरनामकर्म, (६८) दुःस्वरनामकर्म, (६९) अनादेयनामकर्म, (७०) अयशस्कीर्तिनामकर्म, (७१) निर्माणनामकर्म, (७२) नीचगोत्र। जिनके आहारक शरीर आहारकाङ्गोपाङ्ग नामकर्मका सत्त्व नहीं, उनके ७० प्रकृतियोंका क्षय होता है, दो का असत्त्वही है।

अयोगकेवली गुणस्थानके अंतिमसमयमें शेष बची हुई सब प्रकृतियोंका

१३ प्रकृतियोंका क्षय हो जाता है—(१) अनुदयरूप वेदनीय, (२) मनु-
ष्यायु, (३) मनुष्यगति, (४) पञ्चेन्द्रियजाति, (५) मनुष्यगत्यानुपूर्वी,
(६) त्रसनामकर्म, (७) बादरनामकर्म, (८) पर्याप्तनामकर्म, (९) सुभग-
नामकर्म, (१०) आदेयनामकर्म, (११) यशस्कीर्तिनामकर्म, (१२) तीर्थंकर
नामकर्म, (१३) उच्चगोत्र। जिनके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध ही नहीं हुआ
था, उनके तीर्थंकर प्रकृतिका सत्त्व ही नहीं है अतः उनके १२ प्रकृतियोंका
क्षय होता है।

अयोगकेवलीका काल समाप्त होते ही निष्कर्मा वह अयोगी प्रभु
ऊर्ध्वगमन स्वभावसे एकही समयमें लोकके अन्ततक पहुंच जाते हैं। इन्हें सिद्ध
कहते हैं। इनके आत्माका आकार अन्तिम शरीर प्रमाण रहता है। इसका
कारण यह है कि प्रदेशोंके संकोच विस्तारका कारण उपाधिसंबंध है। अब
यहाँ उपाधि है नहीं सो अन्तिम शरीरसे कम होनेका या बढ़ जानेका प्रसंग
नहीं है। चरम शरीरसे कुछ न्यून जो कहा जाता है उसका कारण यह है
कि नख, केश, झिल्ली रहने के कारण जितना विस्तार समझ लिया जाता
था पहिली, अब नख केश झिल्ली की बात ही कहाँ, सो उस दृष्टि से न्यून
कहा जाता है अथवा भीतरकी पोल भर जानेके कारण कहा जाता है।

निकट भव्य जीवके इस प्रकार क्षायिक सम्यक्त्वसे लेकर व्युपरतक्रिया-
निवृत्ति शुक्लध्यान तक समस्त कर्मप्रकृतियोंका क्षय हो जाता है फिर सदैव
के लिये सर्व उपाधियोंसे रहित केवल यह चैतन्यपिण्ड नीरंग निस्तरंग
निःसम्पर्क अनन्त ज्ञानानन्दमय रहता है।

प्रश्नावलि

१. जिस ध्यानके प्रतापसे शेष समस्तकर्म नष्ट होते हैं उस ध्यानका
नाम व अर्थ बतावो।

२. अयोगकेवलीके द्विचरम समयमें कितनी प्रकृतियोंका क्षय होता है?

३. अयोगकेवली द्विचरम समयमें सामान्यकेवलीके कितनी प्रकृतियों
का क्षय होता है।

आत्मभक्ति

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जांय सारे। टेक।

ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो।
भ्रान्तिका नाश हो, शान्तिका वास हो, ब्रह्म प्यारे। तेरी.।१।

सर्व गतियोंमें रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोंमें रह उनसे न्यारे।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे। तेरी.।२।

सिद्धि जिनने भी अबतक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे। तेरी.।३।

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्यय के भेदोंसे पारे।
नित्य अन्तःअचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे। तेरी.।४।

आपका आपही प्रेम तू है, सर्व श्रेयोंमें नित श्रेय तू है।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे। तेरी.।५।

आत्मकीर्तन

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम । टेक ।

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह है भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं राग वितान । १ ।

मम स्वरूप है सिद्ध, समान, अमितशक्ति सुख ज्ञाननिधान ।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान । २ ।

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज पर को पर जान, फिर दुखका नाहि लेश निदान।३।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम ।४।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ।
दूर हटो पर कृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम । ५।